

सूर साहित्य में सामाजिकता और प्रगतिशील आलोचना

(विशेष संदर्भ - डॉ.रामविलास शर्मा, शिव कुमार मिश्र और प्रो. मैनेजर पाण्डेय)

सुश्री प्रेमवती

सहायक प्रध्यापक (तदर्थ)

गुरु गोविन्द सिंह कालेज ऑफ कामर्स

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

सूरदास हिन्दी की कृष्ण भक्ति काव्यधारा के ही नहीं बल्कि मध्यकालीन वैष्णव भक्त कवियों में भी सर्वप्रमुख स्थान रखते हैं। कृष्ण की बाल लीला, रासलीला और उद्धव-गोपी संवाद में उनका मुख्य स्वर अपने युग में फैली जातिगत संकीर्णताओं को ध्वस्त करते हुए सामाजिक और आर्थिक स्तरों पर एकता और सहृदयता बनाए रखना रहा है। जिसकी व्याख्या प्रगतिशील आलोचकों की भक्ति काव्य संबंधी आलोचना में मिलती है। जिसकी विवेचना करना मेरा इस आलेख का उद्देश्य होगा। सूरकाव्य के भक्ति और श्रंगारिक पदों में जो लोकोन्मुखता और सामाजिक भावना आदि से अन्त तक व्यक्त है, उसके मूल्यांकन का अवलोकन होना चाहिए। यही मेरा भी अभीष्ट है।

प्रस्तावना

सूरदास साहित्य के मूल्यांकन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना का विशेष महत्व रहा है। आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी से पूर्व सूर-काव्य को 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर कवि की अपेक्षा भक्त और श्रद्धा-भाव से व्याख्यायित किया जाता रहा है। साथ ही उनके काव्य को मौलिक उद्भावना की अभिव्यक्ति के बजाए वल्लभ संप्रदाय से जोड़कर देखा गया। आचार्य शुक्ल ने सूरकाव्य में सहृदयता, कल्पनाशीलता, तन्मयता, नवीन प्रसंगों की उद्भावना शक्ति, वाग्विदग्धता और उनकी काव्य-भाषा की अपूर्व सृजनशीलता की बड़ी आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या की। वहीं आचार्य द्विवेदी ने आचार्य

शुक्ल की सूर संबंधी आलोचना में एक कदम समाजोन्मुखता की ओर बढ़कर सूर-काव्य की नवीन सिरे से व्याख्या की। जिसमें उन्होंने सूर के कवि व्यक्तित्व की स्वाधीनता, प्रेम के विद्रोही स्वभाव, सूरसागर में स्त्री-चरित्रों की प्रधानता, पदों की रचनापद्धति की मौलिकता आदि का मूल्यांकन किया और सूर काव्य की लोकोन्मुखता और सामाजिकता से हमें अवगत कराया। सूर काव्य की इसी सामाजिकता का विकासात्मक आलोचकीय रूप हमें प्रगतिशील आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा, शिव कुमार मिश्र और मैनेजर पाण्डेय की भक्ति-काव्य संबंधी आलोचना में दिखाई देता है।

विश्लेषण

सूर की भक्ति किसी कल्पनालोक का मार्ग नहीं दिखाती, बल्कि इसी जीवित संसार में भक्ति को लोक कल्याणकारी रूप में प्रशस्त करती है। सूर ने निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर सगुण साकार ईश्वर की आराधना की, जो भक्ति का एक व्यवहार्य और सुगम मार्ग सभी मनुष्य के लोक कल्याण के लिए प्रस्तुत करती है। सूर ने साधारण मानवीय दुर्बलताओं को सहज रूप में स्वीकार किया और उनसे मुक्त होने के लिए प्रभु की वंदना की। सूर की भक्ति-भावना में 'लोक-संग्रह-भाव' अपने पूर्ण रूप में दिखाई देता है।

इस संबंध में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, "सूर की काव्यानुभूति में वात्सल्य-भाव के जो रूप हैं, वे एक विशेष संदर्भ से जुड़े होने पर भी व्यापक जनजीवन में मौजूद वात्सल्य की अनुभूति के समान हैं। इसलिए सूरदास के वात्सल्य-चित्रण में साधरणीकरण की असाधारण क्षमता है। सूर के बाल कृष्ण के रूप, व्यवहार, लीला, चेष्टा और विभिन्न भाव दशाओं में प्रत्येक सहृदय पाठक सामान्य बच्चे के जीवन और व्यवहार को प्रतिबिम्बित पाता है। सूर के कृष्ण की विशिष्टता को भूलकर पाठक उसे सामान्य बच्चे के रूप में देखता है। यही नहीं, सूर की यशोदा के मातृ हृदय से हर माँ अपने हृदय का तादाम्य कर सकती है।

वात्सल्य प्रेम और वात्सल्य भक्ति का संयोग भाव हो या वियोग-भाव हर स्तर पर सूर ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। जब हम सूरसागर को पढ़ते हैं, तो हमें ईश्वर स्वरूप श्री कृष्ण का बाल रूप नहीं बल्कि सामान्य जनजीवन में मौजूद किसी भी सामान्य बच्चों की कल्पना मन में आ जाती है। यही रूप यशोदा का

भी सामान्य माता के रूप में उद्घाटित हुआ है। आज हमारे समाज में मातृ-प्रेम धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। अब तो समाज में कितनी ही भ्रूण हत्याएँ हो रही हैं। अभी हाल-फिलहाल का ही एक उदाहरण उत्तर प्रदेश, गाजियाबाद के डॉ. तलवार दम्पति का लिया जा सकता है। जिन्होंने अपनी इहकलौती संतान को बड़ी बेरहमी से मार दिया। ऐसे कई केस आए दिन समाज में होते रहते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों के प्रति भावनात्मक लगाव पैदा करने, हमारी संवेदनशीलता, सहानुभूतियों का विस्तार करने और इस प्रक्रिया में हमें सभ्य बनाने में सूरदास की कविता हमारी मदद कर सकती है।

शिवकुमार मिश्र ने सूरसागर के वात्सल्य और श्रंगारिक पदों में लौकिकता और सामाजिक चेतना का भाव देखा है। उनका कहना है कि वात्सल्य प्रेम और श्रंगारिक पदों में हमें सिर्फ माता और पुत्र प्रेम या गोप-गोपियों के प्रेम के अतिरिक्त इन वर्णनों के भीतर से उभरने वाली दूसरी व्यंजनाओं को भी समझना चाहिए। यह दूसरी तरह की व्यंजनाएँ हैं : कृष्ण का ईश्वरीय रूप हटाकर उन्हें सामान्य बालक की तरह उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को मानवीय और लौकिक धरातल पर देखना। ठीक इसी प्रकार माता, और उनकी प्रेमिका राधा के प्रेम और उनके विरह वर्णन को सामान्य नारी की भांति आंकना। तो हम देखेंगे कि इस वात्सल्य प्रेम और श्रंगारिक प्रेम के साथ स्त्री अस्मिता का प्रश्न भी उभर कर सामने आता है। सूर सागर में स्त्री अपने बारे में स्वयं निर्णय लेने और स्वच्छन्द होकर उन्मुक्त गगन के नीचे अपनी इच्छानुसार नारी न कबीर को काव्य में दिखाई देती है, और

न ही तुलसी काव्य में। कबीर के अनुसार स्त्री माया है, ठगिनी है। वह यहां तक कह देते हैं कि 'नारी की छाँई परत अंधा होत भुजंग' और तुलसीदास तो नारी को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में ही बिल्कुल नहीं हैं, उन्होंने लिखा है- 'जिमि स्वतन्त्र भई नारि बिगर्ई'। ऐसे समाज में भक्त कवियों की नारी के प्रति ऐसी सोच थी। इन सब से स्वतन्त्र सोच लेकर अवतरित हुए भक्त कवि सूरदास, जिन्होंने वात्सल्य प्रेम के माध्यम से समाज में नारी, माता और पत्नी की एक साफ-सुथरी छवि पेश की।

शिव कुमार मिश्र लिखते हैं, "वल्लभाचार्य ने आपने पुष्टिमार्ग में बाल कृष्ण की जो आराधना प्रधान और केन्द्रवती रूप में मान्यता की तथा सूर जैसे कवि जिस उत्साह तथा तन्मयता से ईश्वर के इस बाल रूप में डूबे-उतराए, जिस ऊँचाई पर जाकर उन्होंने वात्सल्य को प्रतिष्ठित किया, क्या उसके भीतर से हमें उनका इस प्रकार का कोई भी प्रयास लक्षित नहीं होता कि अस्त-व्यस्त होते हुए सामाजिक जीवन में संतुलन लाने के हेतु समाज में गार्हस्थ धर्म की मर्यादा को पुनः प्रतिष्ठित किया जाए, कि ईश्वर के बाल रूप की महिमा के माध्यम से नारी और इस प्रकार उसके मातृत्व को सम्मानित किया जाए। जहाँ बालक होगा, स्वभावतः वहाँ माँ भी होगी, नारी होगी।"

परम्परा से प्राप्त जो आलोचक सूर काव्य पर वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय का प्रभाव लक्षित कर उनकी कविता का मूल्यांकन करते हैं, वह सूर-काव्य की मौलिकता को नहीं समझ सकते। सूरसागर में सूर ने मात्र कृष्ण-लीला और रास-लीला के रूप में परम्परा से प्राप्त कथा ही नहीं

कहीं बल्कि समाज में व्याप्त सभी प्रकार के संबंधों का जीवित और सार्थक ढंग से वर्णन भी किया है। समाज में व्याप्त नारी के मातृत्व की, गार्हस्थ जीवन की विशद व्यंजनाओं के साथ ही उन्होंने नारी अस्मिता और नारी के आत्म-स्वाभिमान जैसे प्रश्न को उठाकर नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। जिसमें रसलोलुपता के स्थान पर लोकोन्मुखता है। शुक्ल जी ने सूर की प्रेम-भावना पर आक्षेप किया है कि वह एकान्तिक है और लोकधर्म का प्रतिपादक नहीं है - "वह भक्ति की एकान्त साधना का आदर्श प्रतिष्ठित करती हुई जान पड़ती है, लोक धर्म के किसी अंग का नहीं।"

आचार्य शुक्ल को सूर-काव्य का संयोग प्रेम वर्णन ही नहीं वियोग प्रेम वर्णन भी पसंद नहीं आता। आचार्य शुक्ल को वियोग वर्णन 'रामचरितमानस' में राम और सीता का, या फिर जायसी कृत 'पद्मावत' में नागमती का ही पसंद आता है। सूरसागर में वर्णित 'वियोग वर्णन' उन्हें उच्च कोटि का नहीं लगता। गोपियों का वियोग उन्हें अस्वाभाविक-सा लगता है। उनके अनुसार गोपियां कृष्ण के इतना निकट होते हुए भी विरह में तड़पा करती हैं और चार कदम चलकर उनसे मिल नहीं पाती। उन्हें इस पर भी आपत्ति है कि विरह से परेशान सिर्फ गोपियाँ हैं, कृष्ण नहीं। और तो और गोपियों के वियोग में सीता के वियोग की-सी गंभीरता नहीं है।

सूर काव्य में वात्सल्य प्रेम और वियोग के चित्रण के प्रसंग में नारी अस्मिता की जो पहचान मिलती है। वह प्रेम के संयोग और वियोग वर्णन में पूरी तरह से उभरकर सामने आती है। सूर का वियोग वर्णन बिहारी आदि रीतिकालीन कवियों

की भाँति उपहास्यास्पद या औपचारिकता पूर्ण लिखा वियोग वर्णन नहीं है। बल्कि “उसमें वियोग के त्रासद चित्रण को उभारने और उसे लम्बे समय तक झेलते रहने की अद्भुत क्षमता है।” उसमें गोपियों के चरित्र का स्वरूप इतना निखर कर सामने आया है जो उनकी पहचान, उनके अस्तित्वबोध, स्वाभिमान को उभारता ही नहीं बल्कि उसे बनाए रखने के लिए उसमें शक्ति और ऊर्जा का संचरण भी करती है। “वियोग का तन्मय कर देने वाला त्रासद चित्रण ही नहीं, उस वियोग चित्रण के बीच से मानिनी नारी की, नारी अस्मिता अस्मिता की जो छवि सूर ने उभारी है, उसका कोई भी मुकाबला नहीं है।”

सूर की गोपियाँ स्वाभिमानिनी और अपने आत्म-सम्मान को बनाए रखने वाली गोपियाँ हैं। वह चाहती तो दो कोस दूर कृष्ण से मिलकर अपनी विरह-वेदना को कम कर सकती थीं। परन्तु नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि उन्होंने कृष्ण से सच्चा प्रेम किया था, पर अपना आत्मसम्मान खोकर नहीं। इसके अलावा सूर-काव्य में सामंती-परिवेश भी कहीं प्रत्यक्ष रूप में कहीं अप्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति सभी मार्क्सवादी आलोचकों की आलोचना में नहीं मिलती।

प्रगतिशील आलोचक डॉ.शर्मा ने विशेष रूप से तुलसी काव्य का मार्क्सवादी दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन किया तो नामवर सिंह ने कबीर का पुनर्मूल्यांकन किया। एक ने आचार्य शुक्ल की स्थापनाओं का तुलसी के संदर्भ में विकास किया, तो दूसरे ने आचार्य द्विवेदी की स्थापनाओं का कबीर के संबंध में विकास किया। चाहे रमेश

कुंतल मेघ हों या फिर तुलसी को लोकवादी कहने वाले डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी सभी का झुकाव तुलसी काव्य और कबीर काव्य की आलोचना पर ही विशेष रूप से रहा है। इन आलोचकों की तुलना में मैनेजर पाण्डेय और शिवकुमार मिश्र ने मार्क्सवादी दृष्टि से सभी भक्त कवियों का पुनर्मूल्यांकन किया। जिसमें सूर काव्य का मार्क्सवादी दृष्टि से मूल्यांकन अति महत्वपूर्ण है।

मैनेजर पाण्डेय ने सूर काव्य की सामाजिकता को उजागर कर निर्गुण काव्य की सामाजिकता के समकक्ष रखकर उसका मूल्यांकन किया और कहा कि निर्गुण काव्य में जो सामाजिक चेतना के स्वर जो दिखाई देते हैं। वैसा ही सामाजिक परिवेश की व्याख्या का वर्णन सूर ने अपने काव्य में किया है। उन्होंने लिखा है, “निर्गुण संतों की तरह सगुण भक्तों की कविता में सामंती समाज और उसकी विचारधारा के विरुद्ध ललकार की भाषा में उग्र विद्रोह घोषणाएँ कम हैं, लेकिन उनकी कविता में चरित्रों के निर्माण, कथा की संरचना, यथार्थ बोध, भाव बोध और जीवन मूल्य के बोध के स्तर पर सामन्ती व्यवस्था और विचारधारा का विरोध प्रकट हुआ है। सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम की जिन कथाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की है, वे संस्कृत काव्य की उदात्त परम्परा की उपज और लोकजीवन में प्रचलित कथाएँ हैं। इन कथाओं के नामक अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाले वीर पुरुष हैं। सामंती समाज-व्यवस्था के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने वाली जनता इन कथा-नायकों के संघर्ष में अपने संघर्ष की आकांक्षा का मूर्त रूप देखती है। यही इन कथाओं की व्यापक लोकप्रियता का रहस्य

हैं। सूर और तुलसी के कृष्ण और राम अन्यायी, अत्याचारी और दमनकारी शासकों को मारकर उनकी दमनकारी सत्ताओं के स्थान पर लोकहित-कारी राज्य-व्यवस्था की स्थापना करते हैं।”

इस आधार पर अगर हम यहां सूर और तुलसी के काव्य की सामाजिकता या उनके काव्य में सामंती व्यवस्था के प्रति विद्रोह की बात आचार्य शुक्ल की आलोचनात्मक दृष्टिकोण में करें तो हम पाते हैं कि आचार्य शुक्ल निर्गुणियों की काव्य धारा में ‘लोक-संग्रह का अभाव’ बताकर उसकी आलोचना करते हैं। साथ ही उन्हें सगुण भक्त में सूर और तुलसी में से तुलसी काव्य में चरित्रों के निर्माण, कथा की संरचना, यथार्थ बोध, भावबोध और जीवन मूल्य के बोध के स्तर पर सामंती व्यवस्था और विचारधारा का विरोध तो होता दिखाई देता है, पर सूर काव्य में वह ये सभी स्तर कम या नहीं के बराबर दिखाई देते हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार पारिवारिक और सामाजिक जीवन के बीच हम सूर के बालकृष्ण को ही थोड़ा बहुत देखते हैं। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, “बाल लीला के भीतर कृष्ण चरित का लोक-पक्ष अधिकतर आया है, जैसे कंस के भेजे हुए असुरों के उत्पात से गोपों को बचाना, काली नाग को नाथकर लोगों का भय छुड़ाना। इन्द्र के कोप से डूबती हुई बस्ती की रक्षा करने और नन्द को वरुण-लोक से लाने का वृत्तान्त यद्यपि प्रेमलीला आरम्भ होने के पीछे आया है, पर उससे सम्बद्ध नहीं है।”

बड़ी ही आश्चर्य की बात है कि आचार्य शुक्ल इन सभी सामाजिक कृत्यों के पीछे प्रेम-भावना का कारण बताकर उसे ‘लोकसंग्रह के भाव’ से अलग

कर देते हैं और उनके प्रेम को भी वासनायुक्त कह उसकी निन्दा करते हैं। इन्द्र के कोप से पूरी बस्ती को बचाने, असुरों से गोप-गोपियों की रक्षा करने या फिर काली नाग से गांव वालों को बचाने में कहीं भी व्यक्तिगत प्रेम वासना दिखाई देती है ?

कबीर की आलोचना हो या फिर सूर काव्य की आलोचना और या फिर जायसी काव्य की आलोचना आचार्य शुक्ल हमेशा तुलसी काव्य की सामाजिकता, प्रेम-भाव या फिर भक्ति-भाव को, यहाँ तक कि भाषा की तुलना भी अन्य भक्त कवियों के समक्ष रखकर करते हैं। उन्हें जो ओज और उत्साह तुलसी द्वारा वर्णित मारीच, ताड़का, खरदूषण आदि में दिखाई देता है। वही ओज और उत्साह उन्हें सूरदास द्वारा वर्णित बकासुर, अघासुर, कंस के वध और इन्द्र के गर्व मोचन में नहीं दिखाई देता। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं, “शुक्ल जी ने मारीच, ताड़का और खरदूषण के निपात-वर्णन की प्रशंसा की है। लेकिन तुलसी के ये अपेक्षाकृत कमजोर अंश हैं, इसे कौन नहीं जानता ? स्वयं शुक्लजी को ये अंश बहुत प्रिय न थे, तर्क-युद्ध में विजयी होने के लिए दलील देना और बात है। पथिक वेश में वन जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता का वर्णन शुक्ल जी को कितना प्रिय था, यह इससे मालूम हो जाता है कि तुलसी की भावुकता का विवेचन करते हुए उन्होंने बार-बार उस प्रसंग के उद्धरण दिये हैं और यह जानकर कि एक ही जगह से बहुत उद्धरण दे रहे हैं, उन्होंने यह सरस वाक्य लिख भी दिया है, “क्षमा कीजिएगा, यह दृश्य हमें बहुत मनोहर लगता है, इसी से बार-बार सामने आया करता है।”

यदि राम का रावण को मारना एक लोक-कल्याणकारी कार्य था तो ठीक उसी प्रकार कृष्ण का कंस को मार कर अपने माता-पिता को उनके चंगुल से मुक्त कराना भी एक लोक कल्याणकारी कार्य है। जैसे राम ने रावण को मार अपनी प्रिय पत्नी सीता को बचाया था। अगर कृष्ण का शत्रु कंस व्यक्तिगत रूप से उनका शत्रु था, जैसा कि आशचार्य शुक्ल ने कहा है तो राम का शत्रु रावण भी व्यक्तिगत रूप से उनका शत्रु होगा। परन्तु सच तो यह है कि कंस दुराचारी से जिस प्रकार प्रजा परेशान थी। ठीक उसी प्रकार रावण से भी सामान्य जन और ब्राह्मण वर्ग परेशान था। दोनों को ही मार कर कृष्ण और राम ने लोक हितकारी कार्य किया था। जिसका वर्णन सूरसागर और रामचरितमानस में मिलता है।

डॉ.शर्मा ने कहा है कि सूर के कृष्ण दुर्योधन की सभा में द्रौपदी की लाज बचाने वाले, कंस के अत्याचारों से पीड़ित जनता के दुख दूर करनेवाले और अर्जुन के सहायक बनकर उनकी मदद करने वाले कृष्ण में क्या यह लोकरक्षक रूप या लोक कल्याणकारी कार्य नहीं है। उन्होंने लिखा है, “भक्त के लिए ही कृष्ण ने अपना प्रण छोड़कर सुदर्शन चक्र धारण किया था। उन्होंने ‘मटि बेद की कानि’ भीष्म का प्रण रख लिया और ‘सोई सूर सहाइ हमारे’, वह सूर के भी सहायक है। रथ से उतरकर धरती पर चक्र लिये दौड़ते हुए कृष्ण के उड़ते हुए पीतपट और ऊँची भुजा का सूर ने कलात्मक वर्णन किया भी है। उसी भुजा से गोवर्धन उठाकर कृष्ण इन्द्र के कोप से ब्रज के लोगों की रक्षा करते हैं। रावण के शत्रु राम से सूर अपरिचित नहीं है। “आजु अति कोपे है रन

राम।” तुलसी के राम की तरह सूर के राम भी अपनी जन्मभूमि के गीत गाते हैं, अयोध्या पर सुरपुर को भी निछावर करते हैं। कृष्ण को भी ब्रज वैसे ही प्रिय है और अन्त में डॉ. शर्मा तुलसी और सूर काव्य में लौकिकता का आदि से अन्त तक स्वीकारते हुए लिखते हैं, “यदि लोक संग्रह का भाव बन जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता में है, तो वैसे ही भाव कृष्ण की बाल लीला, रासलीला और उद्धव-गोपी संवाद में भी है।”

इस प्रकार सूर सागर में डॉ. शर्मा ने कई जगहों पर कृष्ण का लोकरक्षक रूप दिखाकर उसमें ‘लोक-संग्रह-भाव’ की अपनी स्वीकृति दी। सूरसागर में इसी ‘लोक-संग्रह-भाव’ और स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति का आलोचनात्मक विकसित रूप मैनेजर पाण्डेय की सूर काव्य की आलोचना में दिखाई देता है। मैनेजर पाण्डेय सूर काव्य की आलोचना में डॉ. शर्मा से कदम आगे बढ़ते हुए ‘लोक-संग्रह-भाव’ की प्रमुखता को किसान-जीवन में देखते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने सूरकाव्य को किसान-जीवन से जोड़कर देखा। और वह पाते हैं कि सूरकाव्य में अप्रत्यक्ष रूप से किसान-जीवन की झलाकियाँ लोगों के सुख-दुःख, हर्ष, उल्लास, प्रेम के आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन में अपने पूरे परिवेश के साथ विद्यमान हैं।

वह डॉ. रामविलास शर्मा की इस बात से सहमत है कि “भक्ति आन्दोलन किसी एक वर्ग का आन्दोलन नहीं था, उसमें किसान, शिल्पकार, व्यापारी आदि सभी शामिल थे। वास्तव में भक्ति आन्दोलन सामन्ती व्यवस्था से पीड़ित और उससे मुक्ति के लिए छटपटाते संघर्षशील सभी

वर्गों का व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था। लेकिन उसमें मुख्य भूमिका शिल्पकारों और किसानों की थी, इसलिए वह जनसंस्कृति के उत्थान का आन्दोलन बन सका। एक ओर उसमें जीवन-जगत की सच्चाई और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, सामन्ती समाज व्यवस्था से मुक्ति की आकांक्षा और पुरोहितवाद का उग्र विरोध है।”

डॉ. रामविलास शर्मा ने कबीर को कारीगर, सूरदास को चारागाह संस्कृति का कवि और तुलसीदास को किसान-जीवन का कवि माना। परन्तु सच यह है कि सिर्फ तुलसी ही नहीं बल्कि कबीर, सूर और जायसी में भी किसान-जीवन अपने पूरे विकसित रूप में दिखाई देता है। मैनेजर पाण्डेय ने सूरदास की भक्ति भावना और 'प्रेम-भावना' में ही 'लोक-संग्रह का भाव' नहीं देखा बल्कि सूरसागर के आदि से अन्त तक पदों में 'लोक-जीवन' 'लोक-धर्म' और 'लोक-संग्रह' का भाव विद्यमान है। 'भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य' अपनी पुस्तक में मैनेजर पाण्डेय ने आरम्भ में ही कहा है कि भक्ति काव्य की व्याख्या आचार्य शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, डॉ. शर्मा और डॉ. नामवर सिंह सभी आलोचकों ने अपने-अपने मानदण्ड और स्थापनाओं के आधार पर की। वही मानदण्ड वह सभी भक्त कवियों की आलोचना करते समय समान रूप से लागू करते हैं। और बाद में यह समस्या आती है कि कौन-सा कवि श्रेष्ठ है ? तुलसी से श्रेष्ठ है कबीर, कबीर श्रेष्ठ हैं सूर से। जबकि सभी भक्त कवि अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ लिए हुए हैं और उनका मूल्यांकन अपनी इन्हीं विशेषताओं के आधार पर

किया जाना चाहिए न कि तुलसी के समक्ष कबीर या सूर को रखकर उनका मूल्यांकन करना चाहिए। जो तुलसी काव्य की विशेषता है। वह सूर और कबीर या फिर अन्य भक्त कवियों के काव्य की विशेषता नहीं हो सकती। सभी कवि अपना ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ लिए हुए हैं, हमें उसे भी समझना चाहिए। इस ओर हमारा ध्यान मैनेजर पाण्डेय कराते हुए लिखते हैं, “आचार्य शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा और प्रो. नामवर सिंह के महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रयत्नों के बावजूद भक्ति काव्य की व्याख्या हिन्दी आलोचना के लिए आज भी एक चुनौती है। इसका एक कारण भक्तिकाव्य की अपार सृजनात्मक समृद्धि है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा की कविता एक-सी नहीं है। उनमें से हरेक की कविता का अपना विशिष्ट रूप, रंग और स्वर है। एक की कविता से निकलकर दूसरे की कविता में प्रवेश करना लगभग कविता की दूसरी दुनिया में पहुँचना है। जो आलोचक इन कवियों की कविताओं में केवल सामान्य एकता ढूँढते रहते हैं, वे उनकी सृजनात्मक विशिष्टताओं और विविधताओं को देख नहीं पाते।”

यही कारण है कि आचार्य शुक्ल को लोकमंगल की भावना, प्रेम का मर्यादित रूप, शील, शक्ति और सौन्दर्य का भाव, परिष्कृत भाषा इत्यादि गुण रामचरितमानस में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं, परन्तु यदि इन मानदण्ड के आधार पर सूर, कबीर, मीरा, जायसी का काव्य देखें तो स्थिति बदल जाएगी और निष्कर्ष तुलसी से भिन्न निकलकर सामने आयेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि ये सब गुण बाकी भक्त कवियों में

विद्यमान नहीं हैं। विद्यमान है परन्तु वह अप्रत्यक्ष रूप से भाषा की बनावट में मिले हुए हैं। रामचरितमानस की कथा, परिवेश, चरित्र की संरचना, सूर सागर की कथा, परिवेश चरित्र की संरचना से भिन्न है। जिस कारण तुलसी और सूरदास की समझ भी अपने-अपने परिवेश और समाज के अनुसार अलग-अलग है। प्रत्येक भक्त कवि का मूल्यांकन करते समय उनकी काव्य की कथावस्तु, उनकी सामाजिक सोच और उनके परिवेश का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि कबीर, तुलसी में आलोचक लोक संरक्षक भाव, लोक धर्म भावना प्रत्यक्ष रूप से देख पाते हैं। परन्तु सूरदास, जायसी, मीरा में वह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि उनमें 'लोक-संग्रह का अभाव है या फिर उसमें सामाजिकता है ही नहीं। इस संबंध में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, "भारतीय समाज के इतिहास, उसकी सांस्कृतिक प्रक्रिया और उसके भीतर उठे भक्ति आन्दोलन से कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा का संबंध एक जैसा नहीं है। इसीलिए सामाजिक अंतर्विरोधों और भावात्मक वैचारिक द्वन्द्वों के बारे में उनकी चिन्ताओं में भी अन्तर है। भक्ति आन्दोलन और उसके काव्य की यह जटिल समग्रता उस व्याख्याकार को झटकाती है, जो किसी एक कवि की सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि को केन्द्रिय दृष्टि मानकर उसकी सापेक्षता में अन्य कवियों का मूल्यांकन करता है या एक कवि के भाव-बोध को दूसरे कवि के भाव-बोध की कसौटी बनाता है।"

यही कारण है कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के भक्तिकाव्य संबंधी स्थापनाओं का ही

विकास प्रगतिशील आलोचकों की भी भक्ति संबंधी आलोचना में पाया जाता है। वह भक्त कवियों को आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के ही दृष्टिकोण से देखते हैं। जबकि होना यह चाहिए कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की भक्ति काव्य संबंधी आलोचना के जो प्रगतिशील तत्व हैं, उनका आलोचनात्मक रूप से सार्थक तरीके के साथ विकास करना चाहिए। और जो रूढ़ व परम्परावादी तत्व हैं, उन्हें छोड़ देना चाहिए। मैनेजर पाण्डेय की भक्तिकाव्य की आलोचना में यही तकनीक दिखाई देती है। उन्होंने किसी आलोचक या भक्त कवि का मूल्यांकन श्रद्धा-भाव या भक्ति-भाव से नहीं बल्कि तटस्थ रहकर वस्तुवादी दृष्टिकोण से किया है।

मैनेजर पाण्डेय ने आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की भक्ति काव्य संबंधी आलोचना का बड़ी सार्थक तरीके से आलोचनात्मक विकास किया है। वह यह मानते हैं कि आचार्य शुक्ल ने यह कहा कि सूर की कविता में 'लोक-संग्रह का अभाव है, परन्तु वह यह भी कहते हैं कि उनकी भक्ति संबंधी आलोचना में ऐसे अनेक सूत्र और संकेत हैं, जिनके सहारे सूर काव्य में कहीं प्रत्यक्ष रूप में और कहीं परोक्ष रूप में व्यक्त लोक-चिन्ता की खोज संभव है। परन्तु बाद के कुछ आलोचकों ने आचार्य शुक्ल के इन संकेतों की दिशा को समझकर आगे बढ़ाने के बदले उन संकेतों को ही लक्ष्य मान लिया और उन्हें ही सिद्ध करने की कोशिश करने लगे। आचार्य शुक्ल के उन्हीं अनेक संकेतों में से एक संकेत को मैनेजर पाण्डेय ने समझा और सार्थक दिशा में डॉ.रामविलास शर्मा से भिन्न विकास किया।

मैनेजर पाण्डेय ने कहा कि आचार्य शुक्ल की सूर काव्य संबंधी आलोचना से यह संकेत मिलता है कि सूरसागर में पशुचारण-काव्य की प्रवृत्ति मिलती है। मैनेजर पाण्डेय इस संबंध में आचार्य शुक्ल का यह उद्धरण प्रस्तुत करते हैं कि “बाललीला के आगे फिर उस गोचारण का मनोरम दृश्य सामने आता है, जो मनुष्य जाति की अत्यन्त प्राचीन वृत्ति होने के कारण अनेक देशों के काव्य का प्रिय विषय रहा है। यूनान के पशुचारण काव्य का मधुर संस्कार यूरोप की कविता पर अब तक कुछ न कुछ चला ही आता है। कवियों को आकर्षित करने वाली गोप-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति के विस्तृत क्षेत्रों में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश कृषि, वाणिज्य। कृषि, वाणिज्य आदि और व्यवसाय जो आगे चलकर निकले, वे अधिक जटिल हुए -उनमें उतनी स्वच्छन्दता न रही।”

आचार्य शुक्ल के इस संकेत से डॉ. शर्मा ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि सूर पशुपालकों के कवि हैं, तुलसी किसान-जीवन से जुड़े हैं, और उस युग में किसान-जीवन के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास ही हैं। मैनेजर पाण्डेय ने आचार्य शुक्ल के आशय का यह अर्थ लगाते हैं कि सूर सागर में बाल लीला के बाद गोचारण का मनोरम दृश्य का जिक्र करते हैं, तो उनका मतलब सूर के सम्पूर्ण काव्य को गोचारण काव्य या प्रागैतिहासिक पशु-चारण काव्य सिद्ध करना नहीं है। बल्कि ऐसा वही आलोचक सूर काव्य के संबंध में कहते हैं, जो सूरकाव्य के मूल्यांकन के नाम पर सरलीकरण करते हैं या फिर वह जो तुलसीदास के समक्ष तुलनात्मक स्वरूप किसी अन्य कवियों को आने ही नहीं देते। पाण्डेय जी

के अनुसार गोचारण या पशु-चारण काव्य के संकेत सूरसागर में दिखाई देते हैं। वह प्रसंगवश आए भी हैं। परन्तु किसान-जीवन का सम्पूर्ण परिवेश ही सूरसागर में कही प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। इसीलिए उनके काव्य को किसान-जीवन से जोड़कर देखा जाए न कि गोचारण या पशु-चारण काव्य संस्कृति से।

सूरसागर में गोचारण या पशुपालन कृषि व्यवस्था का अंग या उसका एक भाग बनकर आया है या फिर कहीं-कहीं गोचारण व्यवस्था या पशुपालन उनके अतीत के अनुभवों की स्मृति बनकर उनके गीतों, उत्सवों या काव्य में सम्मिलित है। गोचारण या पशुपालन का विकसित रूप ही कृषि होता है। सूर काव्य में यही ग्राम-समाज और किसान भी अभिव्यक्ति कहीं प्रत्यक्ष रूप में हुई है और कहीं अप्रत्यक्ष या सांकेतिक रूप में। जहां किसान-जीवन प्रत्यक्ष रूप में कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है, वहां उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं। परन्तु जहां वह लोक-अनुभव और लोक-कला के रूप में अर्थात् भाषा की अभिव्यक्ति के उपकरण (छन्द, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, मुहावरों, लोकोक्तियों) के माध्यम से भीतर अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है, वहां समझने में थोड़ी कठिनाई होती है। इसलिए सूर काव्य-कला की भाषा की सूक्ष्मता का ठीक प्रकार से विश्लेषण कर समझना बहुत जरूरी है। “सूर के काव्य में किसान-जीवन दोनों रूपों में है। यहाँ किसान-जीवन के यथार्थ का जितना प्रत्यक्ष चित्रण है, उससे अधिक किसान-जीवन के अनुभवों की सांकेतिक व्यंजना है। विनय के पदों में किसान-जीवन के यथार्थ के प्रतिनिधिक चित्र अधिक हैं, जबकि भ्रमरगीत में मुहावरों, कहावतों,

लोकोक्तियों और अलंकारों के माध्यम से उस जीवन के अनुभव सांकेतिक रूप से आए हैं।”

पाण्डेय जी के अनुसार सूरसागर में किसान-जीवन का चित्रण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में मिलता है। ठीक इसी प्रकार ‘तुलसीदास काव्य’ में भी किसान जीवन दोनों रूपों में मिलता है। ‘कवितावली’ और ‘रामचरितमानस’ में प्रत्यक्ष रूप में किसान-जीवन की झलकियाँ मिलती हैं। उनकी रचना ‘विनय पत्रिका’ में अप्रत्यक्ष रूप से किसान-जीवन का वर्णन मिलता है। इस संबंध में डॉ.रामविलास शर्मा लिखते हैं, “तुलसीदास की वाणी मूलतः कृषक जनता की वाणी है। यह वाणी अप्रत्यक्ष रूप से विनय पत्रिका में अपनी अपार वेदना से हृदय को द्रवित कर देती है।”

सांकेतिक रूप या अप्रत्यक्ष रूप में लगभग सभी भक्त कवियों के काव्य में किसान-जीवन के चिह्न अवश्य मिलेंगे। मुगलों के समय और उससे पहले सामन्त या राजाओं की आमनदनी का मुख्य स्रोत थी कृषि। ग्रामीण समाज में सभी अच्छी-बुरी बात कृषि से संबंधित ही होती थी और हर सजग कवि उसका चित्रण खुलकर काव्य में न होकर सांकेतिक रूप में होने का क्या मतलब है। यह अकारण ही नहीं था कि डॉ. शर्मा भक्ति-आन्दोलन को किसान चेतना से जोड़कर देखते हैं। इस संबंध में वह लिखते हैं, “इतिहासकारों का यह कहना कि शाहजहां के समय में किसानों की बुरी दशा हो गई। किसान जमीन छोड़-छोड़कर भागने लगे और औरंगजेब को यह आज्ञा निकालनी पड़ी कि अगर कहने से किसान जमीन न जोते तो उन्हें कोड़ों से पिटाकर खेत जुतवाये जायें। उस समय का मुख्य संघर्ष सामन्त और किसानों के बीच था।

ज्यों-ज्यों हम औरंगजेब की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों संघर्ष तीव्र होता जाता है। अकबर से पहले विभिन्न युद्धों के कारण उस पर पर्दा पड़ा रहा। दूसरी-दूसरी समस्याओं से लोग उलझे रहे। इसलिए हम किसी मध्यकालीन कवि से यह आशा नहीं कर सकते कि वह इस वर्ग-संघर्ष का स्पष्ट चित्रण करेगा। किसी न किसी रूप में उस समय के महान साहित्यिकों की रचनाओं में उसकी छाया मिलेगी ही।”

डॉ.रामविलास शर्मा ने तुलसी साहित्य के संदर्भ में कहा है कि तुलसी साहित्य का सामाजिक महत्व परखने से पहले उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। तुलसीदास अपने समय के एक युग द्रष्टा कवि थे। सामाजिक परिस्थितियाँ, राजनीतिक हलचलों की झलकियाँ उनके काव्य में हमें अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हैं। तो वहीं डॉ.शर्मा सूरदास काव्य का सामाजिक महत्व समझने के लिए उनके युग के ऐतिहासिक संदर्भ का विश्लेषण क्यों नहीं करते। वह सिर्फ कृष्ण कथा के पात्रों के ही आधार पर सामाजिक विश्लेषण करते नजर आते हैं। वह भी बड़े संक्षेप रूप में, जैसे द्रोपदी की लाज कृष्ण द्वारा बचाना, इन्द्र के कोप से प्रजा को बचाना इत्यादि।

डॉ.रामविलास शर्मा जिस प्रकार तुलसी युग का ऐतिहासिक विश्लेषण कर और उसे तुलसी साहित्य से जोड़कर उसमें सामाजिक महत्व की विवेचना करते हैं, ठीक उसी प्रकार सभी भक्त कवियों के अपने-अपने समय का ऐतिहासिक संदर्भ हैं, जो उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। जिसकी मार्क्सवादी दृष्टि से आलोचना होना अभी बाकी है। जिस प्रकार तुलसी और कबीर साहित्य

में सामंती व्यवस्था के प्रति रोष और आक्रोश दिखाई देता है। उसी प्रकार सूर साहित्य में भी सामंती-व्यवस्था का जिक्र आक्रोश और उत्पीड़न के रूप में दिखाई देता है। इस संबंध में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, “सूर के काव्य में जिस किसान-जीवन का चित्रण है, उसका एक विशेष सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ है। वह संदर्भ सामन्ती व्यवस्था का है, जिसके भीतर किसान-जीवन के अनुभवों का स्वरूप बना है। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने सामन्ती व्यवस्था के सन्दर्भ के साथ किसान-जीवन के अनुभवों का चित्रण किया है। उसमें सामन्ती व्यवस्था के अत्याचार और किसानों की यातना को मूर्त और इन्द्रियग्राह्य बनाने के लिए रूपक का सहारा लिया गया है।”

किसानों की निर्धनता के कारण लगान देने में असमर्थता, सामन्तों की लूट, सामंतों के कर्मचारियों के अनाचार, ऋण की प्रथा की क्रूरता, ठाकुर, कोतवाल, पटवारी और जमींदार के अत्याचार की अभिव्यक्ति सूर के विनय संबंधी भक्ति पदों में आसानी से देखी जा सकती है। जैसे इस उदाहरण में सामंती व्यवस्था का प्रक्षत्य चित्रण मिलता है :

अधिकारी जम लेखा मागै, तातै हो आधीतौ।

घर में गथ नहि भजन तिहारो, जौन दिय में छुटौं।

धर्म जमानत मिल्यो न चाहे, तातै ठाकुर लूटौ।

अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।

लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।

सोई करौ जू बसतै रहियै, अपनौ धरियै गांउ।

मैनेजर पाण्डेय ने सूर-काव्य की सामाजिकता के पक्ष में जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही है। वह उसकी भाषा। सूर-काव्य में भाषा के उपकरणों के माध्यम से किसान-जीवन का चित्रण हो पाया है। उस समय की सामंती-व्यवस्था, सामाजिक संबंध, ग्राम प्रबन्ध, भूमि-व्यवस्था और किसान-जीवन का चित्रण सूरदास ने अपनी काव्य-भाषा के उपकरण रूपक, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों इत्यादि के माध्यम से किया है।

सूर की लोकभाषा के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, “सूर ने परम्परा से पाई भाषा में कविता लिखने के बदले किसान-जीवन की वास्तविक भाषा से अपनी कविता की दुनिया बनाई है, इसलिए उनकी काव्य-भाषा में अनेक स्तरों पर ग्राम-समाज और किसान-जीवन प्रतिबिम्बित है। वे ही यौवन को ‘हरियर खेत’ और प्रिय को ‘हारिल की लकड़ी’ कह सकते हैं। वास्तव में सूर की भाषिक संवेदनशीलता में उनकी सामाजिक संवेदनशीलता प्रकट हुई है।”

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की सूर-काव्य संबंधी आलोचना में जो सामाजिक संकेत या आशय मिलते हैं। उनका सार्थक ढंग से आलोचनात्मक विकास प्रगतिशील आलोचकों की आलोचना में दिखाई देता है। कबीर और तुलसी साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भों के समान सूर काव्य के भी ऐतिहासिक संदर्भ हैं जो उनकी कविता की लोकोन्मुखता और सामाजिकता को कबीर और

तुलसी के समक्ष ही नहीं बल्कि उससे भी उच्च स्तर पर दिखाई देते हैं। सूर काव्य के बाल-लीला वर्णन में एक सामान्य बालक और माता की छवियों का मौलिक वर्णन हुआ है। जो स्त्री-अस्मिता और आत्मसम्मान का वर्तमान समाज में बोध कराता है। साथ ही सूर के विनय संबंधी भक्ति पद अपनी सम्पूर्ण रूप से व्याख्या के लिए भक्ति का आवरण हटाकर उसमें अभिव्यक्त जो दैन्य, वेदना तथा पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है उसे सामंती समाज में घुटते हुए जनसाधारण की पीड़ा से जोड़कर देखने और समझने की जरूरत है। आज फिर से सूर-काव्य की प्रगतिशील आलोचना की दृष्टि से मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- 1 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-181.
- 2 मैनेजर पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता, सूरदास, साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.-10.
- 3 शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005, पृ.-
- 4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भ्रमरगीतसार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2007. पृ.-19.
- 5 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भ्रमरगीतसार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2007. पृ.-18.
- 6 शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005, पृ.-

- 7 शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005, पृ.-138.
- 8 मैनेजर पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता, सूरदास, साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.-भूमिका से.
- 9 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भ्रमरगीतसार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2007. पृ.-19.
- 10 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण-1993 पृ.-93-94.
- 11 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पहला संस्करण-1993 पृ.-94.
- 12 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, रामविलास शर्मा, राजकमला प्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृ. 94)
- 13 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-12.
- 14 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-22-23.
- 15 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-23.
- 16 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भ्रमरगीतसार, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2007. पृ.-22.
- 17 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-295.



18 डॉ. रामविलास शर्मा, साहित्य: स्थाई मूल्य और मूल्यांकन, पृ.-39.

19 डॉ. रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1981, पृ.-35.

20 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-296-297.

21 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-297, (सूरसागर में पद सं.-1/185).

22 मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.-302.